
बाल साहित्य के नए मानक

□ क्षमा शर्मा

आपके आमंत्रण का पहला सवाल कुछ फतवे जारी करने जैसा है। आपने कैसे मान लिया कि हिंदी में बाल साहित्य की दशा शोचनीय है और हिंदी में तो कोई समृद्ध परंपरा ही नहीं है। दरअसल हिंदी में कुछ ऐसी परंपरा बन चली है कि जब तक यह न कहो कि हिंदी बहुत ही दो कौड़ी की पिछड़ी हुई भाषा है - तब तक आप अच्छे और प्रगतिशील लेखक नहीं कहला सकते। क्या किसी और भाषा का लेखक अपनी भाषा का इतना अपमान करके सीना तानकर चलता है जितने हम हिंदी वाले। तो जब बेचारी पचास करोड़ की हिंदी हर एक से इतने लात-जूते खाती है तो हिंदी बाल साहित्य की बात कौन करे ? अक्सर बाल साहित्य के बारे में दो तरीके की बातें सुनाई देती हैं। एक तो हिंदी में बाल साहित्य है ही नहीं, है भी तो बहुत दकियानूस लेखन। क्या प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, सुभद्रा कुमारी चौहान, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, अमृतलाल नागर, भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, मृणाल पांडे, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, विष्णु नागर, मनोहर श्याम जोशी, लीलाधर मंडलोई, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', शिवानी, उषा महाजन, मैत्रेयी पुष्पा और ऐसे ही सैकड़ों, सब के सब दकियानूस लेखक हैं ? आप कहेंगे इन्होंने बच्चों के लिए कब लिखा ? तो कहना यही है कि इन्होंने बच्चों के लिए लिखा ही नहीं, खूब लिखा। हां, हमारे विद्वानों की नजर इधर नहीं गई। यदि विश्वास न हो तो गत वर्ष नंदन पत्रिका ने अपने चालीस वर्ष पूरे होने पर एक विशेषांक निकाला था, उसे ही देख लीजिए।

जहां तक बाल साहित्य के मानकों की बात है तो सहज-स्वीकृत यही है कि किसी भी कहानी, कविता या बच्चों के लिए लिखी गई कोई भी रचना कौतूहल, जिज्ञासा और आनंद से भरी नहीं होगी तो बच्चा उसमें दिलचस्पी नहीं लेगा। वैसे भी आज का बच्चा वह बच्चा नहीं है जो अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए माता-पिता, दादा-दादी, चाचा, बुआ, ताऊ-ताई, भाई-बहन, अथवा अध्यापकों के पास जाता था। सूचना विस्फोट के इस जमाने में टेलीविजन, कम्प्यूटर और रेडियो उसके नए गुरू हैं। इन उपकरणों से वह आपके न चाहने पर भी हर तरह का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। मेरे एक परिचित का ढाई साल का बच्चा अभी पढ़-लिख नहीं सकता। लेकिन सड़क पर दौड़ती गाड़ियों को वह ठीक से पहचानकर उनके नाम बता सकता है। दूसरे मित्र की चार साल की लड़की इस तरह से इंटरनेट सर्फिंग करती है कि बड़े-बड़ों के कान काट ले। तो इस अतिरिक्त ज्ञानवान बच्चे के साहित्य के मानक आप कैसे तय करेंगे ? क्या इसे ऐसी कहानियां सुनाकर संतुष्ट किया जा सकता है जिनके अंत में बोल्ट लेटर्स में 'अच्छे का फल अच्छा और बुरे का फल बुरा' या 'बच्चो सदा सच बोलना चाहिए' या 'बड़ों का आदर करना चाहिए' लिखे होते थे। दरअसल हमारी समस्या यह है कि हर पल झूठ बोलते हुए हम बच्चे को राजा हरिश्चन्द्र बनने का उपदेश देना चाहते हैं और चालाकी से सोचते हैं कि बच्चा हमें नहीं देख रहा है। बच्चा सब देखता है, अमल करता है और झूठ बोलने पर हम बड़ों से नफरत करता है। लेकिन क्या कभी किसी लेखक



ने ऐसे बच्चे को नायक बनाया है जो झूठ बोलने के कारण अपने बड़ों से नफरत करता है। उनकी बेईमानी से चिढ़ता है।

नहीं बनाया क्योंकि हमने बच्चे का स्टीरियो टाइप बना रखा है। हमें ऐसा फैक्ट्री मेड बच्चा चाहिए जो सदा सच बोलता हो, आज्ञाकारी हो, श्रवण कुमार की तरह माता-पिता की सेवा करने वाला हो। हमारे अधिकांश बाल नायक ऐसे ही हैं क्योंकि हम बड़ों ने उन्हें बनाया है और अपनी भावनाएं उनमें आरोपित कर दी हैं। बच्चा यदि आज्ञाकारी होगा तो हम बूढ़ों का बुढ़ापा आराम से कट जाएगा। इसलिए आम तौर पर हम बच्चे को हंसने देना नहीं चाहते। जब वह हंसता और खिलखिलाता है तो हम उसे चुप होने की सलाह देते हैं। यहां तक कि वही घिसे-पिटे चुटकुले और वही ले देकर गोनू झा, बीरबल, तेनालीराम और शेखचिल्ली। हमारे यहां हंसना मना है। हंसे तो काम से गए।

दरअसल बच्चों की दुनिया के बारे में जानकारीयां बहुत कम हैं। आज भी किसी सेमिनार में जाओ वहां नए पुराने लेखकों के मुकाबले वही पंचतंत्र, कथासरित्सागर और महाभारत के नाम गिनाए जाते हैं। हम जानते हैं कि ये ग्रंथ बच्चों के लिए नहीं लिखे गए थे या फिर कहते हैं कि हिंदी में कोई हैरी पॉटर जैसी रचना क्यों नहीं हो सकती? क्या सचमुच हैरी पॉटर इसलिए लोकप्रिय हुआ कि वे अच्छे उपन्यास हैं या कि उनके पीछे हार्श मार्केटिंग और मीडिया मैनेजमेंट का भी हाथ है? हैरी पॉटर श्रृंखला की छठी पुस्तक जारी होने से पहले बुक स्टोर्स ने पांच हजार पार्टियां दी थीं। यह सिर्फ एक उदाहरण है, ऐसी और भी न जाने कितनी बातें हैं। आपके यहां किस प्रकाशक ने इतने फैन फैयर से बच्चों की किसी किताब को जारी किया? बच्चों के किस लेखक को इतना कवरेज मिला जितना जे. के. रोलिंग को? बल्कि हिंदी में तो इस तरह भूत, प्रेत, डायन, परी की कहानियां कोई लिखता तो वह रोलिंग की तरह रातोंरात स्टार न बनता बल्कि उस पर पिछड़े मूल्यों को फैलाने वाला और अंधविश्वासी होने का आरोप मढ़ दिया जाता!

बच्चों का साहित्य बच्चों के जीवन से अलग नहीं है। इसलिए यह जरूर देखना चाहिए कि हमारे यहां बच्चों की स्थिति क्या है? जब बच्चों के पोषण, उनकी शिक्षा, उनके खेलकूद की बातें ही हाशिए पर हैं, तो उनके लिए फुरसत में कहानियां-कविताएं लिखने की बात कौन करेगा? इस देश में सबसे अधिक बाल मजदूर हैं, वे खानों और पटाखे उद्योग जैसे खतरनाक कामों में लगे हैं। हर बार सरकार और अन्य संस्थाओं की सौ-सौ कसमें हैं। तब भी क्या यह गरीब बालक नौ सौ रुपए की हैरी पॉटर छोड़िए बीस रुपए की भी कोई किताब खरीद सकता है। बाल साहित्य के मानक इन्हीं फटेहाल, गरीब और हाशिए पर पड़े बच्चों को देखकर तय किए जाने चाहिए।

और बालिका, उसकी तो बात ही मत कीजिए। वह तो नायिका बनती ही नहीं। बहुत पहले मराठी के मशहूर लेखक नाथो ताम्हणकर से एक बच्ची ने सवाल किया था कि आप बच्चियों को क्यों नायिका नहीं बनाते? तब ताम्हणकर ने 1943 में 'चिंगी' की रचना की थी। यह मराठी की पहली रचना थी जिसमें बालिका नायिका थी। तो मानक तय करते वक्त हमें इस बच्ची के बारे में सोचना पड़ेगा जो गरीबी के साथ जेंडर बायस को झेल रही है।

पिछले दिनों एक गोष्ठी में जाना हुआ था जहां बच्चों से जुड़े हुए लोग आए थे। वहां बच्चों के प्रति बरती जा रही हिंसा की बात होने लगी। एक सज्जन ने काफी गंभीरता से कहा कि बस सुबह-सुबह उठकर बच्चे में एक धर देना चाहिए तो वह पूरे दिन ठीक रहता है। एक महिला ने कहा कि बच्चों को बड़ों से कुछ तो डर होना चाहिए। आखिर तुलसीदास जी बहुत पहले कह गए हैं 'भय बिन होय न प्रीत'। यह बच्चे से उसी आज्ञाकारिता की मांग है जिसका जिंदा हम ऊपर कर आए हैं। जब तक डरेगा नहीं बात नहीं मानेगा। जो कहानियां बच्चे को आज्ञाकारिता का पाठ पढ़ाती हैं, उन्हें क्या हम इस रोशनी में देख सकते हैं कि वे बच्चे के अंदर डर की भी सृष्टि करती हैं। समाजशास्त्री मानते हैं कि जो कुछ समाज बच्चे को देता है, वह लौटाकर उसे ही समाज को देता है। बच्चे के प्रति हिंसा उसे और अधिक हिंसक बनाती है। हम बड़े बच्चों पर अपनी बात लादने में बहुत गौरव का अनुभव करते हैं। हम बच्चे में वे सब गुण देखना चाहते हैं जो हम में नहीं हैं।

इसीलिए एक लम्बे समय तक बच्चों के लिए नीति कथाओं और उपदेश से भरी कथाओं की भरमार रही है। लेकिन अच्छी रचनाओं की कमी नहीं रही। बहस किसी और बात के मुकाबले इस बात पर होनी चाहिए कि रचना अच्छी है या बुरी। इसका फैसला भी पाठकों को करना चाहिए न कि हम बड़ों या लिखने वालों को। अक्सर तो हम बड़े ही यह तय कर लेते हैं कि बच्चे क्या पढ़ें? और वही उन्हें खरीदकर देते हैं। सचाई यह है कि न तो बच्चा सिर्फ यथार्थ कथाएं पढ़ सकता है और न ही वह फेंटेसी के सहारे जिंदा रह सकता है।

सच बात यह भी है कि जिस तरह से बाल साहित्य उपेक्षित है उसके मूल्यांकन का काम उससे भी ज्यादा उपेक्षित है। बच्चों की पुस्तकों की ठीक-ठाक समीक्षा एक-दो पत्रिकाओं को छोड़कर और कहीं नहीं छपती है।

यह दुनिया और इससे जुड़ी कोई भी बात मूल्य निरपेक्ष नहीं है। सवाल यही है कि हम रचनाओं के जरिए मूल्यों को कैसे बताएं कि बच्चा बोर न हो साथ ही हम जो बच्चे को बता रहे हैं उस पर खुद भी तो आचरण करें। अन्यथा बच्चा वैसा क्यों बनेगा, जैसा हम उसे देखना चाहते हैं। ♦

